भोपालः सामूहिक विस्मृति की त्रासदी

पी. बालाराम

सबसे बड़ी औद्योगिक त्रासदी दिसम्बर 2-3, 1984 की दरम्यानी रात को हुई थी जब भोपाल स्थित यूनियन कार्बाइड कारखाने से घातक एमआईसी (मिथाइल आइसोसायनेट) और अन्य ज़हरीली गैसें रिसी थीं। इस हादसे में अब तक लगभग 20 हज़ार से ज़्यादा लोग मारे जा चुके हैं और हज़ारों लोग एमआईसी और अन्य गैसों को सांस के साथ शरीर में लेने के परिणाम अब तक भुगत रहे हैं।

धीरे-धीरे भोपाल की त्रासदी की याद जनमानस में धुंधली होती गई; यहां तक कि दिसम्बर 2009 में इस घटना की 25वीं बरसी भी लोगों में कोई खास उत्साह नहीं पैदा कर सकी।

कुछ दिनों पहले भोपाल की एक अदालत ने इस प्रकरण में लापरवाही बरतने के आरोपियों को इतनी कम सज़ा सुनाई कि लोगों में गुस्से की लहर दौड़ गई। अब इस बात की चीरफाड़ की जा रही है कि यूनियन कार्बाइड का अध्यक्ष वॉरेन एन्डरसन 25 वर्ष पहले देश छोड़ कर कैसे चला गया था। अब यह चर्चा हो रही है कि कोर्ट के बाहर किए गए समझौते में स्वीकार की गई मुआवज़ा राशि पर्याप्त थी या नहीं। यह खेद का विषय है कि पच्चीस साल बाद अब यह हिसाब लगाया जा रहा है कि कारखाने की जगह को साफ करने, वहां बचे ज़हरीले कचरे का निपटान करने और ज़मीन तथा पानी के प्रदूषण का उपचार करने में कितना पैसा लगेगा।

दुर्घटना की पच्चीसवीं बरसी पर 3 दिसम्बर 2009 को दिल्ली की एक संस्था के एक छोटे-से कमरे में एक वैज्ञानिक व्याख्यान का आयोजन किया गया था। वक्ता थे एस.श्रीरामाचारी, जो देश के एक प्रमुख रोग विज्ञानी (पैथोलॉजिस्ट) और चिकित्सा वैज्ञानिक थे। श्रीरामाचारी ने भोपाल त्रासदी की घटनाओं को समझने के लिए और हज़ारों व्यक्तियों पर एमआईसी तथा अन्य ज़हरीले पदार्थों के असर का अध्ययन करने के लिए लगभग अकेले अनुसंधान कार्य किया था। असाधारण व्यक्तित्व वाले किंतु सरल और मृदुभाषी श्रीरामाचारी का इस व्याख्यान के केवल बाईस दिन बाद, यानी 25 दिसम्बर 2009 को देहावसान हो गया। जिन हालात में वे भोपाल पहुंचे थे, उनके ही शब्दों में, "हालात निराशाजनक और भयानक थे - हज़ारों लोग मौत के शिकार हो चुके थे और सामूहिक रूप से दफनाए जा चुके थे। लोगों के फेफड़ों और आंखों में लगातार क्षति हो रही थी और लाशें मेडिको लीगल इंस्टीट्यूट में बिखरी पड़ी थीं।"

भोपाल स्थित मेडिको लीगल संस्थान (एमएलआई) के संचालक डॉ. हीरेश चन्द्रा एक अन्य ऐसे वैज्ञानिक थे जिन्होंने यूनियन कार्बाइड कारखाने से गैस रिसने के बाद लगे लाशों के ढेरों के पोस्टमार्टम का काम अपने साथियों के साथ किया था। डॉ. श्रीरामाचारी के शब्दों में, "हालांकि सारे शव इंस्टीट्यूट में नहीं लाए गए थे मगर 3 दिसंबर 1984 के दिन एमएलआई में 311 शव लाए गए थे। अकेले दिसम्बर 1984 में 731, 1985 में 103, 1986 में 90 और1987 और1988 में क्रमशः 44 और 22 शव लाए गए। अलबत्ता ये आंकड़े भोपाल में हुई सारी मौतों के द्योतक नहीं हैं। इसके बाद के वर्षों में भी एमएलआई

में गैस पीड़ितों के पोस्टमार्टम होते रहे। सैकड़ों शव तो एमएलआई तक पहुंचे ही नहीं और उनका सामूहिक दाह संस्कार कर दिया गया।"

भोपाल दुर्घटना के बाद श्रीरामाचारी ने अपना शेष जीवन इन्सानों पर एमआईसी गैस के परिणामों का अध्ययन करने में लगा दिया। एमआईसी के रिसाव के तुरंत बाद भोपाल के अस्पतालों के सामने यह समस्या थी कि इस ज़हरीली गैस के प्रभाव का उपचार कैसे किया जाए। आम तौर पर बहुत अधिक ज़हरीले पदार्थों का उत्पादन करने वाले स्थानों पर यह जानकारी उपलब्ध होती है कि यदि इन्सानों पर उनका असर हो जाए तो उपचार कैसे किया जाए। किंतु भोपाल में यूनियन कार्बाइड के कारखाने में न तो यह जानकारी उपलब्ध थी और न ही उपचार की कोई व्यवस्था थी।

एमआईसी से मरने वालों का पोस्टमार्टम करने पर जो बात सामने आई वह यह थी कि उन सबके आंतरिक अंगों, विशेष रूप से फेफड़ों और श्वास नली का रंग चेरी के समान लाल (कुछ-कुछ टमाटर के समान) हो गया था। इस आधार पर डॉ. हीरेश चन्द्रा ने यह निर्धारित किया कि मौतें सायनाइड नामक ज़हर के कारण हुई थीं।

दुर्घटना के तुरंत बाद एक जर्मन विष विज्ञानी, मैक्स डाउंडरर, जिसने सायनाइड के कारण मौतें होने का अनुमान लगाया था, परीक्षण सामग्री और बहुत सारा सोडियम थायोसल्फेट लेकर भोपाल पहुंचा था। सोडियम थायोसल्फेट सायनाइड विष का उपचार है। इस सबके चलते आंतरिक अंगों के लाल होने के कारणों पर अनुसंधान ज़ोर-शोर से शुरु हो गया। जब डॉ. श्रीरामाचारी ने एक शोध पत्र में आंतरिक अंगों के लाल रंग के आधार पर सायनाइड से मौतों के होने की पुष्टि की तब यूनियन कार्बाइड ने तुरंत एक अभियान चला कर यह प्रमाणित करने का भरसक प्रयास किया कि मौतों का कारण सायनाइड नहीं था। सोडियम थायोसल्फेट उपचार के परिणाम मिले-जुले थे। कई गैस पीड़ित लोगों पर इसका प्रभाव बहुत अच्छा था मगर कई लोगों के लक्षण पुनः प्रकट हो जाते थे। सोडियम थायोसल्फेट उपचार का विरोध इतना प्रबल था कि सरकारी संस्थाओं ने इसे रोक दिया और इस तरह से सायनाइड सिद्धांत को कमज़ोर कर दिया।

2003 में श्रीरामाचारी ने अपने शोध की एक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की थी। इसमें उन्होंने सायनाइड सिद्धांत को ज़ोरदार ढंग से प्रस्तुत किया था। यह हैरत की बात है कि इसका खंडन अविलंब किया गया था और वह भी यू.एस. में बैठे कुछ लोगों द्वारा।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) ने 1985 से 1994 तक एमआईसी के प्रभावों के बारे में गहन अनुसंधान कार्य किया किंतु यह एक रहस्य की बात है कि इसकी रिपोर्ट 2004 में जाकर ही प्रकाशित की गई। गैस रिसाव के बाद होने वाली लगभग तीन-चौथाई मौतें पहले 72 घंटों में हो गई थीं। जिन लोगों पर गैस का असर हुआ था वे आज भी श्वसन, पाचन, तंत्रिका, पेशी व अन्य तंत्रों की बीमारियों से गंभीर रूप से बीमार हैं। श्रीरामाचारी ने अपनी मृत्यु से पहले अपने अनुसंधान कार्य की रिपोर्ट पूरी कर दी थी। इससे कारखाने से निकले ज़हरीले पदार्थों और उनके दीर्घकालीन परिणामों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिल सकेगी। आजकल मुआवज़े की राशि और दुर्घटना की ज़िम्मेदारी को लेकर जो बहस चल रही है, उसके लिए भी यह जानकारी महत्त्वपूर्ण होगी।

जब मैं श्रीरामाचारी, डॉ. हीरेश चन्द्रा और अन्य कई लोगों के बारे में सोचता हूं, जिन्होंने भोपाल की त्रासदी को समझने के लिए ईमानदारी के साथ अथक मेहनत की, तब मैं उन राजनीतिज्ञों, अधिकारियों, उद्योगपतियों, न्यायपालिका और वैज्ञानिकों की लापरवाही और निष्ठुरता के बारे में सोचे बिना नहीं रह सकता जिन्हें इस प्रकरण में तत्परता और ईमानदारी से काम करना चाहिए था किंतु उन्होंने ऐसा किया नहीं। पिछले पच्चीस वर्षों में किसी वैज्ञानिक निकाय ने, किसी शासन या प्रधानमंत्री की सलाहकार परिषद ने यह उचित नहीं समझा है कि पर्यावरण की सफाई की जाए और ऐसे वैज्ञानिक शोध पत्रों को शीघ्र प्रकाशित किया जाए जिनसे मौतों के कारणों और गैस प्रभावितों पर होने वाले परिणामों को समझने में मदद मिल सके। यही सबसे बड़ी त्रासदी है - सामूहिक विस्मृति। ***(स्रोत फीचर्स)***